चैत्यभक्ति एवं वीरभक्ति

(श्री गौतमस्वामी विरचित)

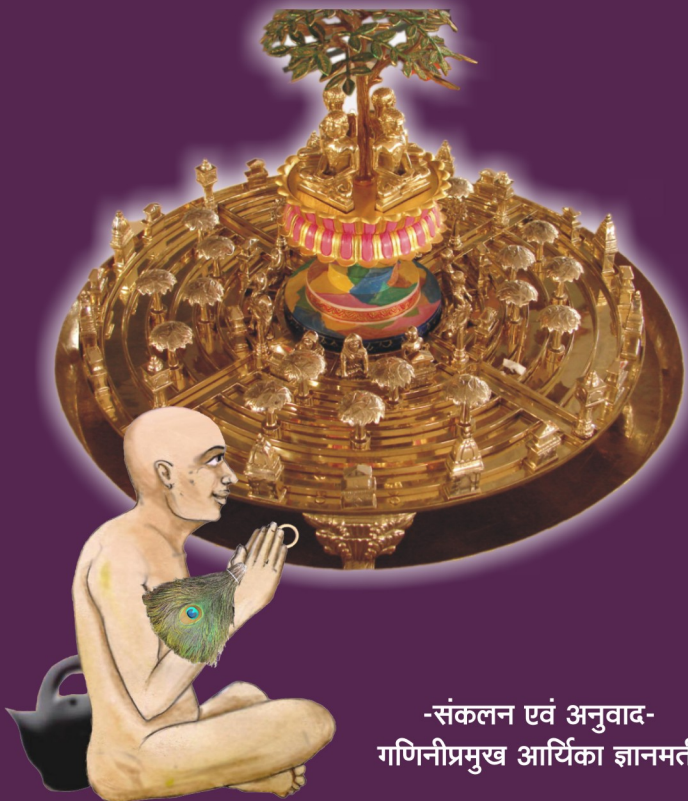

-संकलन एवं अनुवाद-
गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 474
ISBN 978-93-84003-85-2

चैत्यभक्ति
एवं वीरभक्ति

श्री गौतमस्वामी विरचित

–संकलन एवं अनुवाद –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

– प्रकाशक –
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

प्रथम संस्करण	वी. नि. सं. 2542	मूल्य
2000 प्रतियाँ	माघ कृ. 14 (7-2-2016)	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–
कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–
जीवन प्रकाश जैन
सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

श्री गौतमस्वामी प्रणीत चैत्यभक्ति के विषय में

-गणिनी ज्ञानमती

आज से २५७२ वर्ष पूर्व श्रावण कृ. एकम् को इस चैत्यभक्ति की रचना हुई है। इसी दिन श्री गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त किया और भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी है।

पं. श्री लालाराम जैन शास्त्री ने वीर नि. सं. २५५७, ईसवी सन् १९३१ में चैत्यभक्ति का अनुवाद करके **'दशभक्त्यादि संग्रह'** पुस्तक में आज से ८५ वर्ष पूर्व चैत्यभक्ति की टीका में यह वाक्य लिखे थे–

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी ''जयति भगवान्'' इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ–गौतम स्वामी ने भगवान महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्.....'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

वृहद् द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है–

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम-अग्निभूत-वायुभूत नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

इन कथनों से सिद्ध होता है कि चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के प्रथम दिव्यध्वनि के समय की रचना है।

वर्तमान में वीर नि. सं. २५४२ चल रहा है। प्रतिवर्ष श्रावण कृ. एकम् को वीरशासन जयंती के साथ-साथ चैत्यभक्ति-जयंती पर्व भी मनाएँ। यह आप सभी के लिए मंगल प्रेरणा हैं।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से निर्गत चतुर्थकालीन ४ रचनायें हैं– १. चैत्यभक्ति, २. दैवसिक प्रतिक्रमण, ३. पाक्षिक प्रतिक्रमण, ४. श्रावक प्रतिक्रमण। इनकी टीकायें श्री प्रभाचंद्राचार्य कृत प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

आर्यखण्ड में एक ब्राह्मण नाम का नगर था। वहाँ एक शांडिल्य नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या का नाम स्थंडिला था। इस दम्पत्ति के बड़े पुत्र के जन्म के समय ही ज्योतिषी ने कहा था कि यह गौतम समस्त विद्याओं का स्वामी होगा। इनका दूसरा नाम इन्द्रभूति भी प्रसिद्ध है। ये सर्व वेद वेदांग के ज्ञाता थे और ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों के उपाध्याय थे। "मैं चौदह महाविद्याओं का पारगामी हूँ। मेरे सिवाय कोई और विद्वान् नहीं है।" ऐसा अभिमान था।

तीर्थंकर महावीर को केवलज्ञान होने के बाद जब ६६ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब सौधर्म इन्द्र को चिंता हुई और उसने अपने अवधिज्ञान से जाना कि गणधर के अभाव के कारण भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिर रही है। तब गणधर के योग्य 'गौतम' को जानकर इन्द्र ने युक्ति से उसे समवसरण में लाने के लिए वृद्ध का रूप बनाया और गौतमशाला में जाकर कहते हैं–

मेरे गुरु इस समय ध्यान में होने से मौन हैं अतः मैं आपसे एक श्लोक का अर्थ जानने आया हूँ। गौतम ने गर्विष्ठ होकर कहा–पूछो। तब वृद्ध वेषधारी इन्द्र ने यह काव्य पढ़ा–

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रभेदमनिशं वद चास्तिकायं।।''

गौतम को इस श्लोक का अर्थ समझ में नहीं आया, तब उसने कहा–तू अपने गुरू के पास चल, मैं वहीं इसका अर्थ बताकर वाद-विवाद करूँगा। इन्द्र तो यही चाहता था, उसने कहा ठीक है और वह गौतम को समवसरण में ले आया। वहाँ मानस्तंभ को देखते ही गौतम का मान गलित हो गया और उसे सम्यक्त्व प्रगट हो गया। गौतम ने चैत्यभक्ति पढ़ते हुए भगवान के चरणों में नमस्कार किया और भगवान के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। साथ में पाँच सौ शिष्यों एवं दोनों भाईयों ने भी दीक्षा ले ली। अन्तर्मुहूर्त में ही श्री गौतम प्रथम गणधर बन गए और भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

श्री गौतम स्वामी के मुख से निकली इसी चैत्यभक्ति एवं वीरभक्ति का पद्यानुवाद जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी दिव्यशक्ति, चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने करके जन-जन को इसे पढ़ने का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है।

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् स्तोत्र

श्री गौतमस्वामी प्रणीत

(पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)

गणिनी ज्ञानमती

श्री गौतमस्वामी श्री वर्धमानस्वामी को प्रत्यक्ष करके 'जयति भगवान्' इत्यादि उच्चारण करते हैं–

(हरिणी छंद)

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताःपरस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

पद्यानुवाद

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

अर्थ — हे भगवन्-हे महावीर स्वामिन्! आप जयशील हों-आपकी जय हो, जय हो, जय हो! आपके चरण कमल सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार — गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया-मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित— स्पर्शित हैं ऐसे जिनके चरणों में आकर कलुष हृदय वाले, अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प, नेवला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ।।१।।

भावार्थ — यहाँ केवली भगवान महावीर स्वामी के श्रीविहार का एवं समवसरण की महिमा का वर्णन है। केवली भगवान जब श्रीविहार करते हैं तब उनके चरणों के नीचे देवगण स्वर्ण कमलों की रचना करते हैं। भगवान १०० इंद्रों से वंद्य हैं एवं उनके आश्रय में जन्मजात विरोधी पशु भी मैत्री भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

श्रीगौतमस्वामी जिनेंद्रधर्म को नमस्कार करते हुये कहते हैं–

तदनु जयति श्रेयान्, धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विवित्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

अर्थ — अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से, मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे उत्पन्न क्लेशों से छुड़ाता है तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अङ्ग, पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग, पूर्व और अंग–बाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्रदेव का वचनरूप अमृत हम सभी की संसार से रक्षा करे।।२।।

भावार्थ — इस काव्य में भगवान की दिव्यध्वनि से प्रगट होने वाले द्वादशांग श्रुत को एवं दशधर्म आदि रूप जैनधर्म को नमस्कार किया है।

श्री गौतमस्वामी भगवान के ज्ञान की वंदना करते हैं–

तदनु जयताज्जैनी, वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्य-द्रव्यस्वभावविभाविनी।।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्थ — अनन्तर जिनेन्द्रदेव का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतराय-रूप अर्गला से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित व्याधि अथवा जरा- मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को प्रदान करे।।३।।

भावार्थ — इस काव्य में भगवान के दिव्य केवलज्ञान को नमस्कार करते हुये उसकी महिमा बतलायी है।

श्री गौतमस्वामी नवदेवों की स्तुति करते हुए पंचपरमेष्ठी का वंदन करते हैं–

अर्हत्सिद्धाचार्यो-
पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वन्द्येभ्यो,
नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्हत् सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित। त्रिभुवन वंदित पंच परमगुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

अर्थ— सम्पूर्ण जगत् से वन्दनीय सर्व अर्हंतों को, सर्व सिद्धों को, सर्व आचार्यों को सर्व उपाध्यायों को और सर्व साधुओं को मेरा नमस्कार हो ।।४।।

भावार्थ— ढाईद्वीप में १७० कर्मभूमियों में जितने भी पंचपरमेष्ठी हैं, हुये हैं और होयेंगे, श्री गौतमस्वामी ने उन सबकी यहाँ वंदना की है।

जो जन्म के १० अतिशय, केवलज्ञान के १० अतिशय और देवकृत १४ अतिशय, ऐसे ३४ अतिशयों से सहित हैं। ८ महाप्रातिहार्यों से सहित एवं चार अनंत चतुष्टय से सहित हैं। ऐसे ४६ गुणों से सहित अरिहंत परमेष्ठी हैं। सिद्धों के मुख्य ८ गुण हैं। आचार्यों के ३६ गुण, उपाध्यायों के २५ गुण एवं साधुओं के २८ गुण माने हैं।

अर्हंत परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं–

मोहादिसर्वदोषारि-
घातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः,
पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश। विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

अर्थ— जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषरूप शत्रुओं को नष्ट कर चुके हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप एवं दर्शनाकरणरूप रज को नष्ट कर दिया है तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को मेरा नमस्कार हो ।।५।।

भावार्थ— मोहनीय कर्म को शत्रु कहा है, ज्ञानावरण, दर्शनावरण को रज-धूलि के सदृश कहा है एवं अंतराय को रहस् कहा है। इन चारों घातिया कर्मों से रहित, केवली भगवान गर्भ, जन्म आदि कल्याणकों में इन्द्रादि द्वारा अतिशयरूप से पूजे जाते हैं इसलिये 'पूजार्ह' तीनों लोकों में पूजा के योग्य महान हैं।

आज कुछ लोगों का कहना है कि–अरिहंत अर्थात् अरि-शत्रु को मारने वाले–हिंसा करने वाले अरिहंत हैं। ऐसा नहीं है मोहनीय कर्म यह केवल पर को अपना मानना यह मोह परिणाम है न कि कोई व्यक्ति विशेष, इसलिये अरिहंत भगवान अपने राग, द्वेष, मोह परिणामों को हटाने वाले हैं, न कि हिंसा करने वाले, यहाँ यह ध्यान रखना है।

श्री गौतमस्वामी जिनधर्म की वंदना करते हैं–

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-
सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं,
वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्। शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

अर्थ— क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम—निर्वाण जो उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्र देव द्वारा कथित धर्म की मैं वन्दना करता हूँ ।।६।।

भावार्थ— श्री गौतमस्वामी ने यहाँ उत्तम क्षमादि १० धर्मों को जिनधर्म कहा है। अन्यत्र-वीरभक्ति में दया, अहिंसा, संयम और तप को भी धर्म कहा है।

जो उत्तम धाम—स्वर्ग और मोक्ष में ले जाकर धरे–पहुँचावे वही सच्चा धर्म है। वह दया, अहिंसा, संयम, तप व १० धर्मरूप है। रत्नत्रय को भी धर्म कहा है। मुख्यरूप से जिनेन्द्रदेव केवली भगवान के द्वारा कथित धर्म ही मंगल है, लोक में उत्तम है और शरणभूत है। वह '**अहिंसा परमो धर्मः**' के नाम से जाना जाता है।

श्री गौतमस्वामी जिनआगम की वंदना करते हैं–

मिथ्याज्ञानतमोवृत-
लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं,
जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर। अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

अर्थ— जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित—व्याप्त ऐसे लोक—संसार का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से अमित ज्योति से संबंधित है। आचारादि अङ्गों और पूर्व, वस्तु आदि उपांगों से युक्त है तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैनवचन की मैं सदा वन्दना करता हूँ ।।७।।

भावार्थ— द्वादशांग अथवा ११ अंग, १४ पूर्वरूप श्रुतज्ञान आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी उनके अंशरूप जो श्रुतज्ञान है और जो चार अनुयोगों में निबद्ध आचार्यों द्वारा प्रणीत श्रुतज्ञान है वह सभी जिनागम है उसकी मैं वंदना करता हूँ। वर्तमान में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगरूप से जो भी जैन आगम है, जो पूर्वाचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। यह श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से निर्गत चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण पाठ, जिनकी श्री प्रभाचार्य कृत टीका उपलब्ध है। तथा षट्खण्डागम, कसायपाहुड आदि ग्रंथ व उपलब्ध आचार्य प्रणीत ग्रंथ सभी प्रमाणीक जिनवचन–जिनागम हैं।

श्री गौतम स्वामी जिनचैत्य की वंदना करते हैं–

भवनविमानज्योति-
व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां,
वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम्।।८।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

अर्थ — भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों,ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् से वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भी प्रतिमा हैं उन सबकी मैं मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ।।८।।

भावार्थ — भवनवासी व वैमानिक देवों के यहाँ मंदिरों में जिनप्रतिमाओं की तथा मध्यलोक के अकृत्रिम जिनमंदिरों में जो प्रतिमायें विराजमान हैं उनकी संख्या है एवं नरलोक में जो कृत्रिम जिनप्रतिमायें तथा व्यंतर देवों के व ज्योतिषी देवों के मंदिरों की जिनप्रतिमायें असंख्यातों हैं, उन सबकी श्री गौतमस्वामी ने वंदना की है।

ये जिनप्रतिमायें ५०० धनुष प्रमाण पद्मासन मानी गई है। तथा जघन्य माप वाले मंदिरों में यथा योग्य छोटी भी होंगी। अकृत्रिम प्रतिमायें अनादिकाल से हैं और अनंतकाल तक रहेगी। पुनः कृत्रिम प्रतिमायें जो मध्यलोक में ढाईद्वीप तक ही हैं, उन्हें भी नमस्कार किया है।

श्री गौतम स्वामी जिनचैत्यालय की वंदना करते हैं–

भुवनत्रयेऽपि भुवन-
त्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै,
विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह, भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

अर्थ — जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय — मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिये वन्दना करता हूं ।।९।।

भावार्थ — तीनों लोकों में अकृत्रिम जिनमंदिर असंख्यात हैं तथा कृत्रिम जिनमंदिर तीनों कालों की अपेक्षा अनंत हो जाते हैं इस एक काव्य से उन सबकी वंदना हो जाती है।

अकृत्रिम जिनमंदिरों में उत्कृष्ट प्रमाण सौ योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा व पचहत्तर योजन ऊँचा कहा है। मध्यम इनसे आधाप्रमाण वाले व जघन्य उनसे भी आधा प्रमाण वाले माने गये हैं। जंबूवृक्ष आदि के मंदिर इनसे भी छोटे हैं। उत्कृष्ट मंदिर तो १ योजन में ४ कोश — ८ मील होने से १०० × ८ = ८०० मील लंबा हो जाता है, इसका विस्तृत वर्णन त्रिलोकसार में पढ़ें।

श्री गौतम स्वामी नवदेवों को नमस्कार करते हैं–

इति पंच महापुरुषाः
प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां,
दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टाम्।।१०।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

अर्थ — इस तरह वंदना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ।।१०।।

भावार्थ — श्री गौतमस्वामी ने इन नवदेवताओं की वंदना की है, इससे स्पष्ट है कि ये नवदेवता अनादिकाल से हैं व अनंतकाल तक रहेंगे।

इन नवदेवों का अस्तित्त्व १६० विदेहों में सदैव रहता है। भरतक्षेत्र व ऐरावत क्षेत्रों में चतुर्थकाल में रहता है। पंचमकाल में अरिहंत, सिद्ध न होकर सात ही देव हैं। स्वर्ग आदि में पाँचों परमेष्ठी न होकर जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य व चैत्यालय ये चार देव हैं। ऐसे ही मध्यलोक में तेरहद्वीप से आगे असंख्यातों द्वीप-समुद्रों में असंख्यातों ज्योतिर्वासी देवों के व असंख्यातों व्यंतरदेवों के असंख्यात जिनमंदिर हैं।

श्रीगौतमस्वामी कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-
द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे,
प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम,
कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के,
सब जिनबिंब नमूँ गुणखान।।११।।

अर्थ — तीन जगत में विद्यमान महान कांति से समन्वित मन्दिरों में स्थित मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को मैं प्रणमन करता हूँ।।११।।

भावार्थ — इस एक काव्य से श्री गौतमस्वामी ने तीनों लोकों के सभी अकृत्रिम व कृत्रिम जिन-प्रतिमाओं को नमस्कार किया है। वास्तव में जिनप्रतिमाओं के वंदन से अनंत जन्म में संचित अनंत पाप समूह एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं और तो क्या ? जिनबिंब के दर्शन से सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। यह जिनबिंब दर्शन सम्यग्दर्शन में एक निमित्त माना गया है।

कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमा की वंदना–

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः,
प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता,
वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभव हेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

अर्थ— जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर यष्टि रचना प्रभामंडल से दैदीप्यमान है, ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के लिये काय से अंजलि जोड़कर नमस्कार करता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर भक्ति से नमस्कार करता हूँ।।१२।।

भावार्थ— अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं के सदृश ही कृत्रिम प्रतिमायें वीतराग मुद्रा को धारण करने वाली हैं। इनकी कांति व मंदिरों का वैभव अनुपम है। भगवान के दर्शन की भावना मात्र से दो उपवास का फल, चल देने से ५ उपवास, मंदिर के दर्शन करते ही १ माह का, आंगन में प्रवेश करते ही ६ मास का, प्रदक्षिणा देने से सौ वर्ष के उपवास का, प्रभु के मुखकमल का दर्शन करते ही हजार उपवास व स्तुति करते ही अनंत उपवास का पुण्य प्राप्त होता है।

जिनप्रतिमायें वस्त्र, अलंकार, आयुध आदि से रहित होती हैं–

विगतायुधविक्रियाविभूषाः,
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या-
प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

अर्थ— जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये मैं वन्दन करता हूँ।।१३।।

भावार्थ— जिन प्रतिमायें शांतमुद्रा से समन्वित हैं। उनके पास गदा, त्रिशूल आदि व वस्त्रालंकार आदि नहीं है। कृत्रिम जिनप्रतिमायें खड्गासन व पद्मासन ऐसी दो मुद्राओं में बनायी जाती हैं। ये सभी प्रतिमायें नग्न दिगम्बर वस्त्र, अलंकार आदि से रहित परम शांत वीतराग, छवि, नासाग्रदृष्टि से सहित होती है। इनके दर्शन से परिणामों में अपूर्व शांति और अनंतगुणा पुण्य का संचय होता है।

श्रीगौतमस्वामी जिनप्रतिमा की शांतछवि का वर्णन करते हुये नमस्कार करते हैं—

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं,
परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति,
प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

अर्थ— उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।।

भावार्थ— जिनेन्द्र भगवान ने क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, मोह सभी को जीत लिया है अतः ये पूर्ण शांत भाव को प्राप्त कर चुके हैं। ये उन्हीं जिनेन्द्रदेव की प्रतिमायें प्रभु के अंतःकरण की शांति व पवित्रता को प्रगट कर रही हैं यही कारण है कि इनके दर्शन से अशांतमन भी शांत हो जाता है।

श्रीगौतमस्वामी भगवंतों की भक्ति का फल भव-भव में जिनधर्म की याचना करते हैं—

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं,
सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति-
र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

अर्थ— तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।।

भावार्थ— श्री गौतमस्वामी ने जिनप्रतिमाओं की वंदना का फल यही मांगा है कि जन्म-जन्म में मेरी भक्ति जिनधर्म में ही स्थिर बनी रहे, यह याचना हम सभी भक्तों के लिये सार्थक है। एक अकेली जिनभक्ति दुर्गति में जाने से रोक देती है और पुण्य के भंडार को भर देती है। तथा च–जिनधर्म को अनंत संसार में मैंने नहीं पाया, यही कारण है कि आजतक संसारी है, यदि यह धर्म मिल गया होता तो आज सिद्धशिला पर विराजमान होते। अतः प्रभों ! अब यह धर्म मेरा छूटने न पाये, दो-चार भवों में मेरी आत्मा को परमात्मा बना देवे।

श्री गौतमस्वामी चतुर्णिकाय देवों के गृहों की व मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अर्हतां सर्वभावानां,
दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि,
यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान–सम्पत् युत अर्हत् की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

अर्थ—सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा–अनंत दर्शन, अनंतज्ञान जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों—प्रतिमाओं की मैं अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।।

भावार्थ—अकृत्रिम प्रतिमायें अर्हंतों के सदृश होने से अर्हंत प्रतिमायें हैं अथवा अनादि निधन होने से स्वयंसिद्ध प्रतिमायें भी कहलाती हैं। जिनप्रतिमाओं का दर्शन साक्षात् जिनेन्द्र देव के दर्शन के समान पुण्य प्रदान करने वाला है। आज साक्षात् भगवान के समवसरण नहीं हैं, फिर भी उनकी प्रतिमाओं के दर्शन से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर हम और आप भाग्यशाली हैं जो जिनप्रतिमाओं के निर्माण, प्रतिष्ठा व महा–महोत्सव आदि के भी पुण्य अवसर प्राप्त कर रहे हैं।

श्री गौतमस्वामी भवनवासी देवों के जिनमंदिर की वंदना करते हैं–

श्रीमद्भावनवासस्थाः,
स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः,
प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिनमूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

विशेषार्थ—अधोलोक में खरभाग, पंकभाग में भवनवासी देवों के भवनों में सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम जनमंदिर हैं एवं मध्यलोक में किन्हीं–किन्हीं के भवनपुर व आवास में होने वाले असंख्यातों जिनमंदिर हैं ऐसा त्रिलोकसार गा. २९६ के अनुसार जानना चाहिये। इन सभी जिनमंदिरों में १०८–१०८ प्रतिमायें विराजमान हैं। इनसे अतिरिक्त मानस्तंभ, चैत्यवृक्ष, स्तूप, तोरणद्वार आदि में भी जिनप्रतिमायें विराजमान हैं। ये भवनवासी देव यद्यपि सम्यक्त्व सहित वहाँ जन्म नहीं लेते हैं फिर भी वहाँ कोई–कोई प्रतिमाओं के दर्शन से व भगवन्तों के पंचकल्याणक आदि में उनसे सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। अतः ये देव सम्यग्दृष्टि माने गये हैं।

श्री गौतमस्वामी मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनबिंबों की वन्दना करते हैं–

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्–
नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि,
वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभव हेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने भी जिनेन्द्रदेव के प्रतिबिंब हैं उन सबको मैं विभूति—आत्मसंपत्ति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।।

विशेषार्थ—मध्यलोक में अकृत्रिम जिनमंदिर ४५८ हैं एवं ढाईद्वीप में कृत्रिम जिनमंदिर त्रिकाल की अपेक्षा अनंतानंत होते हैं। वर्तमान में केवल जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में–भारत देश में अनुमानतः १५ हजार जैनमंदिर हैं। शास्त्रों में वर्णन है कि–एक जिनप्रतिमा बनवाने का व मंदिर बनवाने का इतना अधिक पुण्य है कि जीवनभर के संपूर्ण उपवास आदि के पुण्य से भी असंख्यगुणा है उसका माप नहीं किया जा सकता है, यही कारण है कि आज भी भव्यजन मंदिर व मूर्ति के निर्माण में अधिक उत्साही देखे जा रहे हैं।

श्री गौतम स्वामी व्यंतर देवों के जिनमंदिर की वंदना करते हैं–

ये व्यन्तरविमानेषु,
स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः,
सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

अर्थ— व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें–उनकी मैं वंदना करता हूँ।।१९।।

विशेषार्थ—व्यंतर देवों के असंख्यातों भवन अधोलोक में–खरभाग, पंकभाग में हैं तथा मध्यलोक में असंख्यातों भवनपुर व आवास हैं। इन सभी में जिनमंदिर माने हैं। इन व्यंतर देवों के असंख्यातों जिनमंदिरों की व उनमें विराजमान जिनप्रतिमाओं की वंदना श्रीगौतमस्वामी ने की है। श्री आदि देवियों के भवनों में जिनमंदिरों का प्रमाण ग्रंथों के अनुसार मैंने निकाला है तो सभी ढाईद्वीप के श्री आदि देवियों के कमलों का प्रमाण ६ करोड़, १८ लाख, ३१ हजार २७२ हैं। इन सभी में जिनमंदिर हैं। ऐसे असंख्यातों देवभवनों में, कूटों पर, व्यंतरों के भवनपुर, आवासों में असंख्यातों जिनमंदिरों में विराजमान सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

श्री गौतमस्वामी ज्योतिषी देवों के विमानों के जिनमंदिर की वंदना करते हैं–

ज्योतिषामथ लोकस्य,
भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति,
विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

अर्थ— अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत जिनगृह हैं उनको मैं विभूति- आत्मसंपत्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

विशेषार्थ— जैन भूगोल ग्रंथों के अनुसार व षट्खंडागम ग्रंथ के अनुसार मध्यलोक में सबसे अधिक ज्योतिषी देव हैं। उनके सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र व तारागणों के असंख्यातों विमानों में प्रत्येक में जिनमंदिर हैं अतः असंख्यातों ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं की श्री गौतमस्वामी ने वंदना की है।

चंद्र विमान ३६७२-८/६१ मील का है। सूर्य विमान ३१४७-३३/६१ मील का है। सबसे छोटा तारा का विमान २५० मील का है जो कि यहाँ से अपने को रुपये बराबर छोटा सा दिखता है।

श्री गौतम स्वामी वैमानिक देवों के जिनमंदिरों की वंदना करते हैं–

वन्दे सुरतिरीटाग्र-
मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते,
तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।

अर्थ— जिनके चरण जो देवों के मुकुटों के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को प्राप्त हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान में स्थित प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोक में ८४ लाख, ९७ हजार, तेईस जिनमंदिर माने हैं। ये सभी सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक हैं। इन सभी जिनमंदिरों में विराजमान जिनप्रतिमाओं की श्री गौतमस्वामी ने वंदना की है।

स्वर्गों में देवगण जन्म लेते ही अंतर्मुहूर्त में उपपाद शय्या से उठते ही अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव को जानकर पुनः भक्ति से सर्वप्रथम मंदिर में जाकर भगवंतों का दर्शन, पूजन आदि करते हैं।

श्री गौतमस्वामी जिनप्रतिमाओं की वंदना का फल बताते हैं–

इति स्तुतिपथातीत-
श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः,
सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।

अर्थ— इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिनकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों-प्रतिमाओं की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।।

विशेषार्थ— अधोलोक में सात करोड़ बहत्तर लाख, मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन, ऊर्ध्वलोक में चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस ऐसे ७,७२००००० + ४५८ + ८४,९७०,२३ = ८,५६,९७,४८१ अकृत्रिम जिनमंदिर है। उनमें १०८-१०८ प्रतिमायें होने से ९२५,५३,२७,९४८ जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे। तथा व्यंतरदेवों, ज्योतिषी देवों के असंख्यातों जिनमंदिर अकृत्रिम हैं उन सबको मेरा नमस्कार होवे।

अर्ध निमिष भी की गई जिनेन्द्र देव की भक्ति अनंतानंत जन्म के पाप समूह को ऐसे ही नष्ट कर देती है कि जैसे अग्नि की एक चिनगारी कोसों के फूस के ढेर को भस्म कर देती है।

श्री गौतमस्वामी अर्हंत भगवान को महानदीरूपी तीर्थ बना रहे हैं–

अर्हन्महानदस्य,
त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-
मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।

अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

अर्थ— जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है।।२३।।
भावार्थ— श्री गौतमस्वामी ने भगवान महावीर स्वामी को महानदीरूप महातीर्थ बनाया है। पुनः कहते हैं कि–आप तीर्थस्वरूप भगवन् संसार के सभी नदी तीर्थों से बढ़कर 'अलौकिक' और सर्वोत्तम 'तीर्थस्वरूप' हो। आपके इस तीर्थ में तीनों लोकों के भव्यजीव स्नान करने के लिये आते हैं और अपने पापमलों को धो डालते हैं।

लौकिक तीर्थ जो नदीरूप में प्रसिद्ध है उनमें स्नान से तो शरीर मल धुलता है किन्तु भगवंतों की भक्तिरूपी गंगा में स्नान करने से—विशेष भक्ति करने से जन्म-जन्म में संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

श्री गौतमस्वामी अर्हंत नदी में ज्ञानरूपी जल की कल्पना करते हुये कहते हैं–

लोकालोकसुतत्त्व-
प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं -
व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।

अर्थ—जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान ही प्रतिदिन बहते हुये जल प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं ऐसा यह अलौकिक उत्तम तीर्थ है।।२४।।

भावार्थ—नदी में जल भरा रहता है। यहाँ केवलज्ञानरूपी जल भरा हुआ है अथवा श्रुतज्ञानरूपी जल भरा हुआ है। व्रतों और शील को दो किनारे बनाये हैं, जहाँ से लोग उत्तर कर नदी में स्नान करते हैं। इन पाँच महाव्रतों या अणुव्रतों से तथा समिति आदि या गुणव्रत आदि शीलगुणों से ही परम्परा से केवलज्ञानरूपी जल को प्राप्त किया जा सकता है।

श्री गौतमस्वामी अलौकिक तीर्थ में राजहंस आदि का सुन्दर उपमा दिखा रहे हैं–

शुक्लध्यानस्तिमित-
स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमंद्रघोषं
नानागुणसमितिगुप्ति-सिकतासुभगम्।।२५।।

शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।

अर्थ—जो शुक्ल ध्यानरूप स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों कर शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है।।२५।।

भावार्थ—नदी में हंस रहते हैं, कल कल शब्द होते रहते हैं व बालू रहती है। यहाँ महातीर्थ में धर्मध्यान-शुक्लध्यान को ध्याने वाले मुनि ही राजहंस हैं। मुनियों–श्रावकों द्वारा किये गये स्वाध्याय पाठ आदि—स्तुतिपाठ आदि 'कलकल' शब्द हैं। अनेक गुण, समिति, गुप्ति आदि यहाँ 'बालू' चमक रही हैं।

श्री गौतमस्वामी लोकोत्तर तीर्थ में लहरों को दिखा रहे हैं–

क्षान्त्यावर्तसहस्रं,
सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लतिकम्
दुःसहषरीषहाख्य-
द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्।।२६।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।

अर्थ—जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त—भंवरे हैं सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर—उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, ।।२६।।

भावार्थ—नदी में भंवर उठते रहते हैं, पुष्प खिले रहते हैं, लहरें उठती रहती हैं। यहाँ क्षमा, मार्दव आदि 'भंवर' हैं। सर्व प्राणियों पर दयाभावरूप पुष्प खिले हुये हैं। अनेक क्षुधा, तृषा आदि परीषहों को जीतना ये ही तरंगें-लहरें उठ रही हैं। ऐसा यह जिनेन्द्र भगवान का अलौकिक तीर्थ है। इसमें अनंत भव्यजीवों ने स्नान करके जन्म-जन्म के पाप मलों को धोकर आत्मा को पवित्र करके परमात्मा बनाया है। आवो ! हम और आप सभी इस महातीर्थ में अवगाहन करके अपने कर्म मलों को दूर करें।

श्री गौतमस्वामी इस महानदी तीर्थ में फेन आदि का अभाव दिखाते हुय कहते हैं–

व्यपगतकषायफेनं,
रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-
मतिदूरनिरस्तमरण-मकरप्रकरम्।।२७।।

रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।

अर्थ—कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है।।२७।।

भावार्थ—नदी में फेन, शैवाल-काई, कीचड़ व मगरमच्छ आदि रहते हैं, किन्तु यहाँ इस महानदी में क्रोध, मान आदि कषायरूपी 'फेन' नहीं है। रागद्वेष आदि काई नहीं है। मोहरूपी कीचड़ नहीं है और मृत्युरूपी मगरमच्छ नहीं हैं। समवसरण में भक्तों की भी मृत्यु नहीं हो सकती है। यही विशेष माहात्म्य है।

हम और आप ऐसे तीर्थ बनने की भावना भायें। भव्यात्माओं! कषाय, राग, द्वेष और मोह ये ही अनंत संसार में हमें व आपको भ्रमण करा रहे हैं। इन्हें आज कम करने का अभ्यास करें व परम्परा से नष्ट करके इस महातीर्थ स्वरूप बनकर आत्मा को पवित्र करें।

श्री गौतमस्वामी ने अलौकिक नदी का सुन्दर चित्रण किया हैं–

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रो-
द्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं,
सास्रवसंवरणनिर्जरानिस्रवणम्।।२८।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं आस्रव, रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।

अर्थ—ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों द्वारा बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कृष्ट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना प्रकार के तपोनिधि—मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण—रोक देने से और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्रवण—निकलने से मुक्त-रहित हैं।।२८।।

भावार्थ—ऋषियों में श्रेष्ठ ऐसे गणधर और महामुनि आदि जो भगवान की स्तुति कर रहे हैं, नदियों में पक्षी के कलरव-शब्द होते रहते हैं सो वे इस अर्हंत नदी में उन पक्षियों के शब्द सदृश हैं। अनेक महामुनिगण भव्यों के लिये पुल के समान हैं। यह अर्हंत तीर्थ भव्यों के पाप कर्मों को रोक देने से 'संवर' का काम करता है और अशुभ कर्मों को निःस्रवण—निकाल देने से निर्जरा भी करा देता है। जैसे लौकिक तीर्थों में जल रोका भी जाता है और किसी तरफ से निकाला भी जाता है वैसे ही इस उत्तम तीर्थ में भी पाप के आने को रोकना व संचित पापों को निकालना—निर्जरा होना भी हो रहा है।

श्री गौतमस्वामी ने इस महातीर्थ में सभी गणधर आदि देव के नहाने का वर्णन किया हैं–

गणधरचक्रधरेन्द्र-
प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या ,
कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।

अर्थ—जिसमें गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है।।२९।।

भावार्थ—यहाँ गणधर से सभी मुनिगण व आर्यिका समूह लेना है, चक्रधर से सभी राजा, महाराजा त्रैवर्णिक श्रावक व श्राविकायें आ जायेंगी और इंद्र से सभी चारों प्रकार के देव-देवियाँ विवक्षित हैं, क्योंकि इन सभी के साथ आगे कहे गये 'महाभव्यपुंडरीक' विशेषण लगा हुआ है, अतः इन महाभव्यों में प्रधान ऐसे गणधरदेव, चक्रवर्ती व इंद्र हैं और प्रभृति शब्द से—इत्यादि में उन सभी बारह सभाओं में स्थित मुनिगण, आर्यिकागण, श्रावक व श्राविका, देव, देवियाँ व बारहवें कोठे के भव्य पशुगण भी आ जाते हैं। ये सभी भक्ति से अपने पापमलों को धोने के लिये इस अनुपम अर्हंत महातीर्थ में स्नान करते हैं।

श्री गौतमस्वामी स्वयं इस अर्हंत महानदी में स्नान कर रहे हैं—

अवतीर्णवतः स्नातुं,
ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यवहरतु परमपावन-
मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम्।।३०।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

अर्थ—जो परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों द्वारा न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंतरूप महानद स्वरूप उत्तम तीर्थ हैं उसमें पापमल के प्रक्षालनहेतु स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे ।।२९-३०।।

भावार्थ—श्री गौतमस्वामी कहते हैं कि–मैं भी इस आपके-महातीर्थ में स्नान करने के लिये उतरा हूँ। यह महातीर्थ अतिशय पवित्र है, दूसरों के द्वारा अजेय है और बहुत ही गहरा है। यह तीर्थ मेरे समस्त पापमल—कर्ममलों का प्रक्षालन करे।

श्री गौतमस्वामी भगवान की वीतरागता का बहुत ही सुंदर वर्णन करते हुये वर्धमान स्वामी की वंदना कर रहे हैं–

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीन-मविकारतोद्रेकतः।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते, हृदय-शुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।

अर्थ—हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयनरूप कमलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप वाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजातरूप में आपका मुखकमल आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है।।३१।।

भावार्थ—भगवान की शांत मुद्रा का सुन्दर वर्णन है, नेत्रों में लालिमा नहीं है, कटाक्ष नहीं हैं, माथे में सिकुड़न नहीं है। यह वीतराग मुद्रा क्रोध, विकार व विषाद तथा गर्व से रहित होने से अंतःकरण की परम पवित्रता को प्रगट कर रही है।

श्री गौतमस्वामी वस्त्राभरण रहित वीतराग छवि का वर्णन करते हैं–

निराभरणभासुरं , विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं , प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्-विविध-वेदनानां क्षयात्।।३२।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

अर्थ — हे भगवन्! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुररूप-सुंदर है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान् है।।३२।।

भावार्थ — भगवान की मुद्रा आभूषण, वस्त्र व आयुध से रहित है। भोजनपान से भी रहित है, फिर भी सुन्दर, मनोहर, निर्भय व परमतृप्त दिखती है।

श्री गौतमस्वामी भगवान के मुखकमल के अवलोकन की महिमा दिखाते हैं–

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदन-प्रतिमदिव्यगन्धोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादि-दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर-मपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभो! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

अर्थ — आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं। जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं हैं, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त- चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है।।३३।।

भावार्थ — तीर्थंकर भगवान के केवलज्ञान होने के बाद नख और केश नहीं बढ़ते हैं। रज और मल का स्पर्श नहीं होता है। भगवान के परमौदारिक शरीर में दिव्य सुगंधि रहती है। सूर्य, चंद्र शुभ लक्षण शरीर में रहते हैं तथा हजारों सूर्यों से अधिक तेजस्वी शरीर होकर भी सभी के नेत्रों को आल्हादित करता है।

श्री गौतमस्वामी भगवान के मुखकमल को चारों तरफ से दिखने की महिमा दिखाते हैं–

हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्र- मंडलमिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

अर्थ — आपके रूप को देखकर मोक्ष के परिपंथी — शत्रु ऐसे प्रबल राग, मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयास्वरूप निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है।।३४।।

भावार्थ — हित के शत्रु प्रबल मोह, राग, द्वेष आदि हैं इनसे दूषित एकांतवादी जनों का कलुषित मन भी आपके मुखकमल को देखकर शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। आपका मुख चारों दिशाओं में दिखता है, यद्यपि मुख एक है परन्तु परमौदारिक दिव्य शरीर होने से एक ऐसा ही अतिशय हो जाता है।

श्री गौतमस्वामी भगवान से सकल जगत को पवित्र करने की प्रार्थना कर रहे हैं–

तदेतदमरेश्वर-प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुंबनीय-चरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्य-तीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अर्थ — देवेन्द्रों के द्वारा नमस्कार प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित-स्पर्शित हैं ऐसा वह यह आपका रूप, जैनमत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरुरूप — अधिकरूप राग-द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ।।३५।।

भावार्थ — अनादिकाल से ये सारे जगत के अज्ञानी लोग मिथ्यात्व के निमित्त से आत्मा, परलोक व मोक्ष आदि के सच्चे स्वरूप को नहीं समझने से अंधे के समान हो रहे हैं। हे भगवन् ! आपका रूप इस जगत के मोही प्राणियों को पवित्र करे-पावन करे। आपके चरण युगल देव-इंद्रों के द्वारा नमस्कृत हैं और तीनों लोकों में महान हैं, पूज्य हैं।

श्री गौतमस्वामी तीनों लोकों के समस्त कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हुये अंचलिकारूप में एक साथ नमस्कार करते हैं–

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भंते! चेइयभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाण-विंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।

अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अर्थ—हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत् संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधित वस्तु से और दिव्य अभिषेक सदा अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं, मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चा करता हूं, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुणसंपत्ति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—यहाँ इस अंचलिका में सामूहिकरूप से तीनों लोकों की संपूर्ण कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाओं की वंदना की है। चारों प्रकार के देवों द्वारा ये सभी जिनप्रतिमायें अभिषेकपूर्वक दिव्य अष्ट द्रव्यों से पूजी जाती हैं। टीकाकार ने 'अंचंति' का अर्थ अभिषेक करना, 'पूजंति' का अर्थ पूजा करना, 'वंदंति' का अर्थ स्तुति करना एवं

'णमंसंति' का अर्थ पंचांग प्रणाम करना किया है। यहाँ श्री गौतम स्वामी ने इनकी भक्ति करके दुःखों का क्षय आदि की भावना-याचना करते हुये जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्राप्ति की याचना की है। यही सर्वोत्कृष्ट याचना है।

श्री गौतमस्वामी रचित, चैत्यभक्ति है ज्येष्ठ।
मैंने गणिनी ज्ञानमती, किया अनुवाद ये श्रेष्ठ।।१।।

वीर संवत् चौबीस सौ, अट्ठानवे अभिवंद्य।
मगसिर वदि दशमी तिथी, पूर्ण किया यह ग्रंथ।।२।।

चैत्यभक्ति का पाठ नित, करो करावो भव्य।
पद्य गद्य अनुवाद पढ़, सुख पावो नित नव्य।।३।।

इति श्रीगौतमस्वामीकृत चैत्यभक्ति समाप्ता।

ॐ ह्रीं गौतमस्वामिकृतचैत्यभक्ति महास्तोत्राय नमः।
ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिकृतवीरभक्ति महास्तोत्राय नमः।
ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने नमः।

वीरभक्तिः

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।

पद्यानुवाद

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।१।।

जो सम्पूर्ण चर–अचर द्रव्यों को उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी भूत, भावी तथा वर्तमान सब पर्यायों को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषों को लिये हुए युगपत् काल क्रम से रहित एक साथ प्रतिक्षण जानते हैं, इसलिए उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं, उन सर्वज्ञ महान गुणोत्कृष्ट अन्तिम तीर्थंकर वीर जिनेश्वर को नमस्कार हो।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।।२।।

वीर सभी सुर असुर इन्द्र से, पूज्य वीर को बुध सेवें।
निज कर्मों को हता वीर ने, नमः वीर प्रभु को मुद से।।

अतुल प्रवर्ता तीर्थ वीर से, घोर वीर प्रभु का तप है।
वीर में श्री द्युति कांति कीर्ति, धृति हैं हे वीर! भद्र तुममें।।२।।

वीर जिनेश्वर सब सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों द्वारा पूजित हैं। वीर जिनेश्वर को गणधरादि बुधजन संसार समुद्र से पार होने के लिए आश्रय लेते हैं, वीर जिनेश्वर ने अपने और पर के कर्मों के समूह को विनष्ट किया है। वीर भगवान को भक्ति से सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। वीर! जिनसे भव–सागर से तारने वाला यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुआ है। वीर जिनेश्वर का बाह्य और अभ्यन्तर तप भारी दुष्कर था जो औरों में नहीं पाया जाता था। वीर जिनमें बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी, शरीर की ज्योति, कान्ति, कीर्ति, धृति ये सब गुण विद्यमान हैं। इसलिए हे वीर ! आप में ही कल्याण है।।२।।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति।।३।।

जो नित वीर प्रभू के चरणों, में प्रणमन करते रुचि से।
संयम योग समाधीयुत हो, ध्यान लीन होते मुद से।।
इस जग में वे शोक रहित हो, जाते हैं निश्चित भगवन्।
यह संसार दुर्ग विषमाटवि, इसको पार करें तत्क्षण।।३।।

ध्यान में एकाग्रता को प्राप्त हुए, संयम से उपलक्षित योग से युक्त होते हुए जो भव्य पुरुष वीर भगवान के चरणों को नित्य प्रणाम करते हैं वे लोक में शोक से विमुक्त होते हैं और विषम संसाररूपी अटवी के पार पहुँच जाते हैं।।३।।

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो,
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।४।।

व्रत समुदाय मूल है जिसका, संयममय स्कंध महान् ।
यम अरु नियम नीर से सिंचित, बढ़ी सुशाखाशील प्रधान।।
समिति कली से भरित गुप्तिमय, कोंपल से सुन्दर तरु है।
गुण कुसुमों से सुरभित सत्तप, चित्रमयी पत्तों युत है।।४।।

जिसका व्रतों का समुदाय मूल—जड़ है, संयम—स्कन्धबन्ध है, जो यम– नियमरूप जल से वृद्धिंगत है, अठारह हजार शील जिसकी शाखाएं हैं, जिसमें समितियाँरूप कलिकाएं हैं, गुप्तियां प्रवाल (पल्लव) है, चौरासी लाख गुणरूप पुष्पों की सुगन्धि है, सम्यक्त्व विचित्र पत्र हैं।।४।।

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः (द्घः)
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।५।।

शिवसुख फलदायी यह तरुवर, दयामयी छाया से युत।
शुभजन पथिक जनों के खेद, दूर करने में समरथ नित।।
दुरित सूर्य के हुए ताप का, अन्त करे यह श्रेष्ठ महान् ।
वर चारित्र वृक्ष कल्पद्रुम, करे हमारे भव की हान।।५।।

जो मोक्षरूपी फल को देने वाला है, दयारूप छाया से प्रशस्त है, भव्यजनरूप पथिकों के सन्ताप को दूर करने में समर्थ है, ऐसा पापरूप सूर्य के सन्ताप का अन्त—नाश करने वाला वह चारित्ररूप वृक्ष हमारे संसार में जो गत्यादि नाना भव हैं उनके विनाश के लिए होवे।।५।।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।६।।

सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।

सब तीर्थंकरों ने स्वयं चारित्र का अनुष्ठान किया है और सब शिष्यों के लिए जैसा है वैसा स्पष्ट कहा है। अतः सब कर्मों के क्षय के साधक पंचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए सामायिकादि पांच भेदों से समन्वित चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ।।६।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।

धर्मरूप चरित्र स्वर्ग और अपवर्ग सम्बन्धी सब सुखों का आकर अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। सब जीवों के हित का करने वाला है, चारित्ररूप इस धर्म को सभी विवेकशील तीर्थंकर आदि संचित करते हैं। धर्म से ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। उस धर्म के लिए नमस्कार हो, धर्म के सिवा और कोई संसारी जीवों का उपकारक मित्र नहीं है। धर्म का मूल दया है। इस प्रकार के धर्म में मैं प्रतिदिन अपना चित्त लगाता हूँ। हे धर्म तू मेरा पालन कर।।७।।

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं), अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तप भी, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूं धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

यह चारित्ररूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है अर्थात् मल को गालन–दूर करने वाला और सुख को देने वाला है। वह धर्म ही अहिंसा, संयम और तपरूप परमोत्कृष्ट मंगल हैं, क्योंकि जिसका मन धर्म में सदा तल्लीन है उसको देव भी नमस्कार करते हैं।।८।।

श्री गौतमस्वामी रचित, वीरभक्ति का पाठ।
मैंने गणिनी ज्ञानमति, किया पद्य अनुवाद।।१।।
पढो पढ़ावो भव्यजन, करो वीर गुणगान।
श्री जिनेन्द्र की भक्ति से, पावो स्वात्मस्थान।।२।।